International Journal of Multidisciplinary Research and Development

Volume: 2, Issue: 6, 636-640
June 2015
www.allsubjectjournal.com
e-ISSN: 2349-4182
p-ISSN: 2349-5979
Impact Factor: 3.762

पूजा रानी
एम.फिल. (छात्रा)
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास उच्च शिक्षा और शोध संस्थान धारवाड केंद्र

Correspondence
पूजा रानी
एम.फिल. (छात्रा)
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास उच्च शिक्षा और शोध संस्थान धारवाड केंद्र

साठ के दशक के दलित साहित्य में भावाभिव्यक्ति

पूजा रानी

जिस समाज के लिए ज्ञान एवं मानव जीवन के सभी भण्डार हमेशा के लिए बंद थे, जिनकी अभिलाषाएं भस्म हो चुका था, जीवन भंग हो चुका था, प्रतिभा जंग खा गई थी, समाज में पशुओं से भी बदत्र जिनकी स्थिति थी, जिनके लिए मानवता के हक नकारे गए थे; मृतप्रायः हुआ वही दलित समाज आज प्रतिभा की मशाल लिए 'हम किसी से कम नही' यह कहते हुए अपना स्वतंत्र साहित्य निर्माण कर आगे कदम बढ़ा रहा है। आज दलित यह जान गया है कि आज तक के साहित्य में दलितों की उपेक्षा की गई है। इस कारण उसे अपनी पीड़ा, दुख–दर्द स्वयं बताने होंगे, क्योंकि शब्दों में बयां दर्द बहुत असर रखता है।

वामन निबांलकर [1] लिखते हैं–
शब्दों से सुलग जाते हैं घर द्वार,
देश और मनुष्य भी।
शब्द बुझाते हैं आग भी
शब्दों से सुलगते हुए मनुष्य की।
शब्द न होते तो नही निकल पाती
आँसुओं की चिंगारियाँ

यही भाव लेकर लिखा जाने लगा है दलित सहित्य। 'दलित साहित्य' में दलित शब्द का अर्थ है– समाज के पद दलित, अधिकार विहीन और सामाजिक, धार्मिक उपेक्षा के शिकार असवर्ण और साहित्य का अर्थ है– एक विशिष्ट तंत्र से रेखांकित किया गया मानव जीवन। समाज जीवन का प्रतिबिम्ब दर्शाता है। 'अब नहिं नाचब' [2] कहानी में राम निहोम विमल ने अपने वक्तव्य में कहा है कि "शोषण–दमन–उत्पीड़न के विरूध, दलितों की प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति तथा शोषण–दमन–उत्पीड़न की प्रवृतियों के विरूद्ध आक्रामक, प्रतिरोधात्मक अभिव्यक्ति, दलित साहित्य के रूप में आई।" 'दलित साहित्य और उसका विषय' लेख में डॉ० शरण कुमार लिंवाले [3] ने दलित साहित्य को दलितो का दुख, परेशानी, गुलामी, कौटुंबिक अधोपतन, विपन्नावस्था, उपहास के साथ ही दरिद्रमय जीवन शैली का चित्रण करने वाला साहित्य कहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि दलित साहित्य है 'आह का उदात्त स्वरूप। डॉ० एन० सिहँ [4] के अनुसार "दलित साहित्य दलित लेखकों द्वारा लिखित वह साहित्य है जो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और मानसिक रूप से उत्पीड़ित लोगों की बेहतरी के लिए लिखा जा रहा है"। मोहनदास नैमिषराय के अनुसार– "दलित साहित्य दलितों द्वारा भोगे गये उपेक्षापूर्ण जीवन का सत्य है, वह कल्पना की वस्तु नहीं, यथार्थ जीवन और जख्मी लोगों के दस्तावेज हैं। वह उनकी मुक्ति का संदेश है। वह चेतना का नया सूरज है। उसमें गुस्सा और नफरत अनुभूति प्रेरित है।"

विभांशु दिव्याल [1] – 'सामाजिक प्रमाणिकता की अभिव्यक्ति है दलित साहित्य' लेख के विचारानुसार "इस धारा में सर्वाधिक प्रमुख प्रखर साहित्य उन लोगों का है जो स्वयं सामाजिक, आर्थिक अपमान, अत्याचार, अन्याय और शोषण का प्रत्यक्षतः शिकार रहे या वर्गो की परम्परा से निकलकर आए। इसी तरह के लोगों के लेखन या साहित्य में उस धारा की स्थापना का जो आज दलित लेखन या दलित साहित्य के नाम से अभिहित है।"

मराठी साहित्यकार खांडेकर [2] के अनुसार "दलित साहित्य का उद्देश्य दलित समस्याओं पर विचार विमर्श करना है।" दलित साहित्य उपेक्षा, अपमान, पीड़ा आदि की वर्जनाओं से मुक्ति दिलानें का एक सशक्त साधन है जो सदियों से दलितों पर थोपी गई थी। तो क्या दलित साहित्य वेदना और विद्रोह का साहित्य है ? अगर विद्रोह है तो किससे ?

जयप्रकाश कर्दम देते हैं इसका उत्तर अपने कविता संग्रह 'गूंगा नहीं था मैं' [3] में–
झूठे हैं वे लोग

झूठे हैं वे लोग
जो कहते हैं कि देश में
जातिवाद आखिरी सासें ले रहा है
जब तक स्मृतियाँ रहेगी
रामायण, गीता और वेद रहेंगे
तब तक वर्ण शुचिता रहेगी
अस्पृश्यता रहेगी, जातिवाद रहेगा
समाज में विघटन और विद्वेष रहेगा।
समाज को प्रगतिशील बनाना है,
जाति के जहर को मिटाना है तो,
इन धर्मग्रंथों को,
आग लगानी होगी और नकारना होगा।

एक दूसरी कविता 'बेमानी है आजादी' [4] भी दृष्टव्य है–

नही निकल सकता जो आज भी,
पहनकर नए कपड़े,
कितने ही गाँवों में,
नहीं निकल सकती जिसकी
घोड़ी पर बारात

'तिनका–तिनका' [5] काव्य संग्रह में भी इसी भावना को कुछ इस तरह व्यक्त किया है–

मुझको ऐसी कविता न दो,
जिसमें काम करने वाले पर मार पड़े,
और वह चूँ तक न करे,
इबारत तो सोची जाए नवाबजादों को लेकर,
और मरने के काम पर डटा रहे आदमी,
मुझको ऐसी कविता न दो।
इसी काव्य संग्रह में एक और वेदना –
विरही का मन,
दीनहीन अभिशप्त जन का,
कौन लेता पक्ष।

दलित कवि मलखान सिंह की कविता पुस्तक 'सुनो ब्राह्मण' से एक कविता–

सुनो ब्राह्मण,
हमारे पसीने से बू आती है तुम्हें
सूँघो खुद के बेटों को, बेटियों को
तभी जान पाओगे तुम
जीवन की गंध को
बलवती होती है जो
देह की गंध से।

देखा जाए तो विकास की अनेकानेक ऊँचाईयों को छूने वाले समाज में दलित व्यक्ति और उसका समाज अभी विभिन्न मामलों में अपनी तल्ख सच्चाईयों के साथ निचले पायदान पर खड़ा है जहां उसका लहू सबसे सस्ता है।

ठाकुर के खेत से
सेठ की तिजोरी तक
मेरा ही लहू बहता है
वही सबसे सस्ता है। [6]

एक अन्य कविता भी द्रष्टव्य है–

सूरज की गर्मी से
नहीं झुलसता मेरा शरीर
उसे झूलसाता है
यंत्रणाओं का सूरज

इन सभी स्वरों को देखकर हमें आभास होता है कि दलित व्यक्ति भूख से ज्यादा जातिगत अपमान, उपेक्षा और सांस्कृतिक शोषण से आहत है। वह अभी भी यही महसूस करता है कि भूख के गणित से ज्यादा जाति का व्याकरण दुरूह और गंभीर है।
दलित होने की वेदना सूरजपाल चौहान अपनी कविता में इस प्रकार से बयाँ करते है–

काश तुम, किसी दलित के घर पैदा होते,
विशेषकर, दलित में दलित कहे जाने वाले
भंगी के घर,
तुम्हें उठानी पड़ती
बजबजाती गंदगी
और ढोना पड़ता
गू–मूत से भरा टोकरा सिर पर रखकर।
फिर तुम, भूले से भी वेदों की बात ना करते?
और न रचते प्रतिदिन
नई–नई ऋचाएँ। [7]

दलित काव्य रचनाकार क्रान्ति है। दलित कविता का कवि अपनी क्रान्ति धर्मिता के साथ समाजोन्मुखी है। इसलिए दलित साहित्य में दलितों के भीतर सदियों से उपजा ज्वालामुखी फूट पड़ा है। ओमप्रकाश वाल्मीकि के 'सदियों का संताप' कविता से उद्धृत पंक्तियाँ

यहाँ गली–गली में राम है,
शंबूक हैं, द्रोण हैं, एकलव्य हैं,
फिर भी खामोशी है
कहीं कुछ है,
जो बन्द कमरों उठते क्रन्दन को
बाहर नहीं आने देता
कर देता है रक्त से सनी उंगलियों की महिमा मंडित
शंबूक तुम्हारा रक्त
जमीन के अन्दर
समा गया है जो किसी भी दिन
फूटकर बाहर आएगा
ज्वालामुखी बनकर। [8]

इस काव्य संकलन की एक और कविता द्रष्टव्य है–

मैं खटता खेतों में
फिर भी भूखा हूँ
निर्माता के महलों का
फिर भी निष्कासित हूँ
प्रताड़ित हूँ।

सामाजिक दृष्टि से दलित साहित्य विद्रोह और क्रान्ति के स्वरों को उजागर करता है। जाति भेद, वर्ण भेद, वर्ग भेद, ऊँच–नीच और भाग्य कर्म भेद की असमानता, अस्पृश्यता व शोषण के विरूद्ध स्पष्ट रूप से विद्रह की व्यंजना करती है। दलित साहित्य में साम्राज्यवाद, पूँजीवाद, व्यक्तिवाद, सामंतवाद, अलगाववाद के विरोध में ही नहीं अपितु प्रत्येक स्तर पर किए जाने वाले भेदभाव के विरूद्ध जेहाद है।

"दीदी इंकलाब का क्या अर्थ होता है?"
सदिया ने कहा, "क्रान्ति"
वैभव ने कहा, "जैसी 1857 की क्रान्ति"
सादिया, "वैभव तब की क्रान्ति और अब की क्रान्ति

में फर्क है।
तब की क्रान्ति अँग्रेजों का शासन खत्म करने के
लिए थी और यह क्रान्ति समाज को बदलने की।" [9]

सूरज पाल चौहान की एक कविता 'पिता' नाम से वसुधा पत्रिका के जुलाई; सितम्बर 2006 के अंश में प्रकाशित हुई जो जन्म से निर्धारित कर दी गई जातियों के विरूद्ध अपनी आवाज बुलन्द करती है।

'अच्छी तरह जानते थे
व्यवस्था को जो
देखने में लगती है अच्छी
बहुत अच्छी
अन्दर से है कितनी घिनौनी
अनपढ़ होने के कारण
करना पड़ता है
सफाई, मजदूरी का काम
लेकिन पिता जी,
तुम्हारा साथी
रामनाथ शर्मा भी तो अनपढ़ था
फिर वो क्यों था चपरासी

ये किसी अबोध बालक का प्रश्न नहीं है, ये है दलित समाज का सवाल जो अब शिक्षित हो चुका है और दलित साहित्य उन सबके सवालों को पूछ रहा है जो वह सदियों से न पूछ पाया था। हाँ, ये स्वर दिखाते हैं कि हमारी संस्कृति जिसे हम विश्व में श्रेष्ठ मानते हैं पह देखने में अच्छी है, कहने में अच्छी है पर अंदर से कितनी घिनौनी।

भारतीय संस्कृति नामक कविता भी दृष्टव्य है–

मेरे बच्चों
और पत्नी के फटे लत्तों से
झांकती नजर आती है
भारतीय संस्कृति
क्या यही मूल्य है
मेरे हाड़ तोड़ श्रम का ?

अपने अधिकारों की लड़ाई है दलित साहित्य का स्वर, जो इस कविता में इस तरह फूटा है–

'मेरे अधिकार कहाँ है'
अस्पृश्य, पशु से भी बदत्र
निज श्वासों तक के लाले हैं
उत्पीड़न की जंजीरों में
यूँ फंसा सदियों से मैं
ना मुर्दा हूँ न ही जी सकता
मेरे मौलिक अधिकार कहाँ हैं [10]

एक कविता की निम्न पंक्तियाँ भी दृष्टव्य हैं–

करोड़ों दलित वंचित हैं
सदियों से
बहुत सारे मानवाधिकारों से [11]

सही स्वर हैं दलित साहित्य के; दलित अपने मौलिक अधिकार माँग रहा है। हमारे धर्मग्रंथों ने पेड़–पौधें को भी सुख–दुख समन्वित अर्थात् संवेदनशील कहा, किन्तु शुद्रों के लिए दंड विधान बनाते समय ऐसी क्रुरता अपनाई गई जैसे यह चेतना शुन्य हो। इसीलिए दलित का विरोध है हिन्दू धर्म और उनके धर्मग्रंथों से। इसीलिए दलित साहित्य ने इनके विरूद्ध आवाज बुलन्द की अपने साहित्य में।

श्री सागर [12] के अनुसार, भारत एक राष्ट्र नही बन सका इसका कारण हिन्दू संस्कृति व हिन्दू धर्म है। समाज को हजारों टुकड़ों में बांटने का काम हिन्दू धर्म ने किया है। एक दूसरे के प्रति इतनी गहन घृणा है कि एक दूसरे की जान ले लेते हैं। इन्ही कारणों से देश पर बार–बार आक्रमण हुए व देश गुलाम हुआ। 'दलित साहित्य और उसका भविष्य' पुस्तक में डॉ० शरण कुमार लिंवाले [13] हिन्दू धर्मव्यवस्था के बारे जो कहते हैं उसका भाव यह है कि हिन्दू धर्मव्यवस्था ने दलितों की छाया, स्पर्श और वाणी अस्पृश्य मानी है। जन्मतः मनुष्य को 'अस्पृश्य' और 'गुनहगार' माना है। दलित सम्पति जमा न करे। वे गाँव के बाहर रहे। गधे और कुत्ते ही उनकी सम्पत्ति है। वे सोने के आभूषण न पहने। अपने नाम अमंगल और अभद्र रखे। ऐसे आदेश हिन्दू–धर्मग्रंथ में लिखकर रखे गए हैं ताकि दलित इस व्यवस्था के विरूद्ध बगावत न करें। इसलिए यह व्यवस्था ईश्वर ने निर्माण की है ये सिद्धान्त रखा गया। दलितों की हजारों पीढ़ियाँ यह अन्याय सहन करते हुए जी रही हैं। दलितों की यह वेदना ही दलित साहित्य की जन्मदात्री है। यह वेदना एक व्यक्ति की नहीं अथवा एक दिन की नहीं अपितु वह सदियों की है। इसके विरूद्ध एक स्वर उठा है जय प्रकाश कर्दम के काव्य संग्रह की कविता 'धर्मग्रंथों को आग लगानी होगी' में।

इन कथित धर्मग्रंथों को
आग लगानी होगी, और
नकारना होगा
वर्णित उस ईश्वर को
जो कर्मानुसार
फल देता है
और मोक्ष भी
वर्णो के अनुसार
जगानी होगी शुद्ध प्रजा
ध्वस्त करने होंगे
विषमताओं के संरक्षण [14]

ये विरोध कभी मनुस्मृति को जलाकर प्रकट किया जाता है तो कभी बौद्ध धर्म व ईसाई धर्म अपनाकर। लेकिन धर्म परिवर्तन जातीयता को समाप्त करने का कारगर उपाय सिद्ध नही हुआ। क्योंकि हिन्दुस्तान के अन्य धर्मीय समाज में भी जाति भेद का प्रवेश हो चुका है। तो केवल धर्म बदल लेने से जातिवाद का खात्मा नहीं होगा बेहतर हो यदि हर धार्मिक समुदाय अपने–अपने हिस्से के दलितों का उत्थान करें और दलित स्वयं अपने राजनैतिक और आर्थिक अधिकारों के लिए संघर्ष करें।

लेकिन दलित ये भी नही चाहता कि अपने राष्ट्र कि विरूद्ध कोई कार्य करे, उनकी सोच राष्ट्रीय है जो दलित साहित्य में उभर कर आई है।

भारत में हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई यह मानकर यहाँ रहते है कि यह हमारा देश है। फिर जब भी होते हैं दंगे– चाहे वो 1947 के हो या गुजरात के क्यूँ कहने लगते हैं हिन्दू? मुसलमानों को यहाँ से निकाल फेंको, क्या यह मुस्लमानों का देश नहीं है, क्या तड़प है कि सिक्ख भी अलग खालिस्तान की मांग करता है। धर्म के नाम पर ईसाईयों को आतंकित किया जाता है। तो क्या यह देश केवल हिन्दूओं का है? सुप्रसिद्ध लेखक मोहनदास नैमिशराय 'जख्म हमारे' में राजू और असलम के संवाद [15] के माध्यम से यही प्रश्न उपस्थित करते हैं–

इसलिए कि हिन्दू नहीं चाहते कि मुसलमान हिन्दुस्तान में रहे।'
'पर यह देश तो मुसलमानो का भी है।'
'वे ऐसा नहीं मानते'
'उनके न माने से क्या होता है'

और राजू का यह कहना 'यही तो देश और समाज की त्रासदी है।'

गुजरात के दंगों को बयाँ करता यह उपन्यास साम्प्रदायिक दंगों के बीच एक अहसास पालता है कि दलित न हिन्दू हैं और न मुसलमान। उनके भीतर से सवाल दर सवाल उभरते रहे है। इन्हीं सवालों के उत्तर तलाशने की कोशिश है– घायल शहर की एक बस्ती'। [16] दलित समाज की मनःस्थिति को व्यक्त करता एक और उदाहरण [17] देखिए

सदिया– तुम कौन हो ?
राजु– न मैं हिन्दू हूँ न मुसलमान। मैं दलित समाज से हूँ।

तो क्या दलित समाज कोई अलग धर्म चाहता है या उसकी खोज है समानता और न्याय के लिए? इसका उत्तर देती है जयप्रकाश कर्दम [18] की ये काव्य पंक्तियाँ

बहुत भटका हूँ
असमानता और अन्याय की
गलियों में
मैं समता के राजपथ पर
चलना चाहता हूँ

दलित साहित्य व दलित समाज ऐसा देश चाहता है जहाँ शान्ति और भाईचारे का दर्शन उभरे, जहाँ असमानता न हो और हम सभी धर्मो के लोग बिना किसी द्वेष के इसी देश में रहें।

'जख्म हमारे' में मुस्लिम स्वर– 'जो भी हो हम यहीं पैदा हुए। हमारी कब्रे भी इसी शहर में बनेंगी।' [19] यही भाव व्यक्त करते हैं।

हाँ, यही त्रासदी है इस देश की कि साथ रहते हैं सदियों से, फिर भी दुश्मनों की तरह किसी में मित्रता भी है तो विपरीत परिस्थितियों में उसकी भी संवेदनाए मर जाती है और निभाते हैं पूरी दुश्मनी, बेटियों और माओं को जलील करके। जाने कितने मंचों से सीना चोड़ा कर इस देश के लिए कहा जाता है–

यूनान मिस्र रोमां
सब मिट गए जहाँ से
कुछ बात है के हस्ती
मिटती नहीं हमारी

परन्तु पाकिस्तान, बांग्लादेश, अफगानिस्तान, बर्मा सब थे हमारे हिस्से और मिट गए हमारे मानचित्र से और क्या–क्या गवां देना चाहते हैं हम? समाज का एक बड़ा हिस्सा दलित साहित्य के रूप में आज यही सवाल पूछता है। दलित साहित्य केवल अपने हकों की बात नहीं करता बल्कि स्त्रियों की व्यथा को भी स्वर प्रदान करता है।

दलित साहित्य में स्त्री की व्यथा को चाहे वह दलित है या गैर दलित उसे अपने स्वर दिए हैं क्योंकि भारत में स्त्रियों के साथ भेदभाव का सिलसिला बचपन से ही शुरू हो जाता है। यही कारण है कि पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं का अनुपात निरन्तर घटता जा रहा है। पूरी जनसंख्या की करीब 50 प्रतिशत की जनसंख्या वाली इन महिलाओं में कितनी अपना अहम् स्थान बना पाई ऐसी महिलाएं अंगुली गण्य हैं। उनमें से भी कितनी मामूली परिवारों से थी। सोचने का विषय है अगर सामान्य औरतों व दलित महिलाओं की बात करूँ तो उनका कोई भूतकाल नहीं व वर्तमान भी धुंधला है।

जय प्रकाश कर्दम की एक क्षणिक देखिए [20] –

उसकी भूखी, उदास आखों ने
जिस ओर भी
आशा से देखा है
हर चेहरे पर
काम और कुटिलता की
रेखा है।

ये उस गरीब औरत की दास्ताँ कहती है जो समाज में हर व्यक्ति के द्वारा कामी नजरों से देखी जाती है। आए दिन दलित महिलाओं को डायन या कुलक्षणी, चरित्रहीन कहकर किस तरह बेइज्जत किया जाता है। उसी वेदना को प्रकट करती है कविता –

"अम्बेडकर की संतान"
गांव की भरी पंचायत के सामने
जबरन नग्न की जा रही
युवतियों के बेबस विलाप से
कांपती रही हैं दिशायें
सिहरता रहा है इतिहास पर
हाय रे, भारत महान
नहीं फटता किसी का कलेजा

किसी का कलेजा फटे न फटे इससे स्त्रियों को कोई लाभ नहीं, परन्तु मुझे इतना अवश्य समझ आता है स्त्रियों की जागरूकता के लिए शिक्षा आवश्यक है। महिलायें जब तक शिक्षित होकर अपने अधिकारों व कर्तव्यों को नहीं समझेंगी तब तक परिवार या समाज नहीं सुधरेगा। अगर दलित साहित्य की नजर से देखें तो विषम परिस्थितियों से केवल पुरूष वर्ग में ही जागृति नहीं आई, बल्कि स्त्रियों में भी इसे देखा जा सकता है। सदियों से मूक बनी स्त्रियों मे आत्मविश्वास और विरोध के स्वर दलित साहित्य में बिखरे पड़े हैं।

देवदासियों से लेकर वेश्याओं तक की व्यथा 'आज बाजार बन्द है' शीर्षक से प्रकाशित एक समाजशास्त्रीय कथा है। देह सम्मोहन से तनाव के बीच छटपटाती राष्ट्र की बेटियों के जीवन की विभिन्न परिस्थिति पर सटीक व बेबाक टिप्पणी। इस उपन्यास में दलित समज की बेटियों के जीवन की घटनाओं और दुर्घटनाओं के हर पहलू को उजागर किया गया। 'क्या मुझे खरीदोगे' उपन्यास में भी महानगरीय जीवन महिलाओं का संघर्ष उनकी अस्मिता, साहित्य और व्यापार के रिश्तों को उजागर करता है।

'दलित साहित्य के स्तम्भ' पुस्तक में डॉ० जयप्रकाश कर्दम के स्त्री विषयक विचार दृष्टव्य हैं – "महिलाओं को प्रशिक्षित करके उन्हें रोजगार परक बनाया जाए ताकि वे घरेलू आर्थिक हालातों को सुधारने में भागीदार बन सकें, सम्मान पा सकें तथा पितृसत्त का वर्चस्व उस पर हावी न हो सके। स्त्री का अपना अस्तित्व है उसका नाम भी बच्चे के साथ जुड़ना चाहिए। इसी का उल्लेख उन्होने अपने उपन्यास 'छप्पर' में किया है।" युग बदले हैं, ऋतुएं बदली हैं और हुआ है समाज परिवर्तन पर महिलाओं की स्थिति लगभग वैसी ही है।

उन्ही स्थितियों को बदलना चाहता है दलित साहित्य। 'गूंगा नही था मैं' की कविता 'अक्कर मासी' [21] भी शोषित स्त्रियों के हक में कुछ इस तरह के स्वर देती है–

व्यभि चारिणी होती मेरी माँ
ते खूब गुलछर्रे उड़ाती
नए–नए कपड़े और गहने पहन
मांग–पट्टी निकाल कर रहती
भूखी–नंगी रह
वह दर–दर की ठोकरें नहीं खाती
दो मुट्ठी अनाज के दानों के लिए
किसी पाटिल के घर या खेत में बेगार करने नहीं जाती

ये सभी विवरण प्रकट करते है कि दलित साहित्य स्त्रियों की संवेदनाओं और वेदनाओं को पहचानता है और उनके हक की लड़ाई भी लडता है।

दलित शोषित समाज, हिन्दू वर्ण व्यवस्था को अपने हितों की फांस समझता है, बौद्ध और ईसाई धर्म का भारत में कम प्रचार है, सिक्ख धर्म में भी अब जातिवाद जड़ों तक घुसा है। पढ़ेगें कबीरदास की वाणी, पूजेगें उन्ही की वाणी को और गुरूद्वारें बनाएगें अलग–अलग निहंग आदि हिन्दू धर्म से सिक्ख बने लोग है जो आज जातीयता का शिकार हैं। रहे मुस्लिम वे खुद सुन्नी, शिया, कच्छी, बोहरा, वहाबी, अहमदिया और न जाने कितनी उपजातियों में बंटे हुए है। पर दलित साहित्य मुस्लिम अल्पसंख्यकों के अधिक निकट प्रतीत होता है। ये अल्पसंख्यक भी विभाजन के बाद दलितों के समान जी रहें हैं असमानता का दर्द भोगते हुए, उन्हें कभी महमूद गज़नबी, बाबर की औलाद कहकर ओर कभी भारत विभाजन के लिए जिम्मेवार ठहरा कर परेशान किया जाता है। दलितों को उनके दर्द में अपना दर्द दिखाई देता है इसलिए दलित साहित्य में मुस्लिम और दलित साथ खड़ा दिखाई देता है।

मुस्लिम अल्पसंख्यकों के दर्द को इस तरह बयां किया है –

क्या ये हमारा वतन नहीं है? क्या हम गद्दार है? क्या हमने देश के किसी बड़े नेता को मारा? क्या हमने महात्मा गाँधी को मारा था? क्या इंदिरा गाँधी को हमने मारा था? क्या राजीव गाँधी को हमने मारा था? बताओं, जवाब दो? [22]

क्या हमारे पास कोई जवाब है के हम मानव के साथ मानव का व्यवहार क्यों नहीं कर सकते ? क्या 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' अर्थात सभी प्राणियों को अपने समान समझना केवल धर्मग्रथों का हिस्सा बनकर रह जाएगा ?

अगर निचोड़ रूप में कहूँ तो सम्पूर्ण देश में प्रत्येक जाति के संगठन अपनी–अपनी जाति को मजबूत करने में सक्रिय व ऐक दूसरे से आगे निकलने की होड़ लगाये हुए हैं। इस तरह जातिवाद बढ़ता ही जा रहा है। कानूनी प्रतिबंध के कारण अस्पृश्यता 'छुआछूत' कुछ कम अवश्य दिखाई देती है, किन्तु उसने अब भावनात्मक रूप धारण कर लिया, जिसे ईर्ष्या, द्वेष और नफ़रत को बढ़ावा मिल रहा है।दलित जातियाँ आज भी विषमता से पीड़ित है। दलित जातियाँ आज भी अपनी मुक्ति का प्रयास करती हैं और सवर्ण हिन्दू आज भी उसे पूरी शक्ति से कुचलते हैं। दलित जातियाँ आज भी अपनी मुक्ति का प्रयास करती हैं और सवर्ण हिन्दू आज भी उसे पूरी शक्ति से कुचलते हैं। हरियाणा जैसे राज्य में गोहाना कांड और मिर्चपुर जैसे हादसों के बाद हिसार के दौलतपुर में एक अप्रिय कांड ओर हो गया। फतेहाबाद के सैनियाणा निवासी दलित युवक राजेश का दोष इतना था कि उसने बगैर पूछे मटके से पानी पी लिया था। यह कोई ऐसा कांड नहीं था जिससे किसी का हाथ काट लिया जाए। पीड़ित युवक से मिलने के बाद राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के संयुक्त सचिव का यह कहना कि पूरी व्यवस्था दोषी है, अनायास नहीं है।

आखिर विकास के इतने पायदान चढ़ने के बाद हम कहाँ खड़े है। दिनांक 19.07.2001 जनसत्ता में उमा भारती ने कहा था कि पिछड़ों और दलितों का ख्याल न रखा गया तो गृहयुद्ध का खतरा है वहीं पूरे देश में हरियाणा में घटित इन काण्ड़ों को देखकर लगता है कि दलित के प्रति इस तरह का व्यवहार उसी के बीज बो रहा है।

ऐसी परिस्थितियों में अगर रजत रानी 'मीनू' कहती है कि 17 करोड़ दलितों के बीच में 17 दलितों के नाम मुख्यधारा में नही तो गलत न होगा। हिन्दी में 'अपेक्षा' पत्रिका के सम्पादक डॉ० तेज सिंह को दलित आत्मकथाओं में वर्णित प्रसंग भी काल्पनिक लगते है। दलित आत्मकथा में वर्णित दुख दर्द, जीवन की विषमताएं जातिगत दुराग्रह, उत्पीड़न की पराकाष्ठा भी काल्पनिक लगती है। उनकी ये मानसिकता इस दलित और राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग के सचिव जो कि राजेश को देखने गए थे, की पत्राचारों को दी गई टिप्पणी कि "पूरी व्यवस्था ही दोषी है" के बाद शायद दलितों के स्वरों को मेरे किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं। पूरा समाज कटघरे में खड़ा है।

संदर्भ

1. समाजिक प्रमाणिकता की अभिव्यक्ति है दलित साहित्य। –दलित दखल पुस्तक; पृष्ठ सं० 5–6
2. हिन्दी साहित्य पत्रिका– ताप्ती लोक से
3. धर्मग्रथों को आग लगानी होगी, कविता से पृष्ठ सं० 66
4. कविता– 'गूँगा नही था मै'– जयप्रकाश कर्दम द्वारा रचित; पृष्ठ सं० 24
5. जयप्रकाश कर्दम द्वारा रचित
6. दलित कविता – अन्तर्जाल से प्राप्त
7. दलित कविता – अन्तर्जाल से प्राप्त
8. दलित कविता – अर्न्तजाल से प्राप्त
9. जख्म हमारे –मोहन नैमिशराय; पृष्ठ सं० 112–113
10. पुस्तक– 'गूँगा नही था मैं'; कविता– मेरे अधिकार कहाँ है; पृष्ठ सं० 41
11. सूरजपाल चौहान– दलित कविता के अन्तर्गत अन्तर्जाल पर
12. सरिता मुक्ता; रिप्रिंट, दिल्ली प्रैस
13. दलित दखल, मनुष्य की स्वतंत्रता का पक्षधर है दलित साहित्य; पृष्ठ सं० 16
14. पुस्तक–गूंगा नहीं था मैं; पृष्ठ सं० 66
15. पुस्तक– 'जख्म हमारे है'; मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ सं० 54
16. पुस्तक– नई सदी की पहचान श्रेष्ठ दलित कहानियाँ; मोहन नैमिषराय; पृष्ठ सं० 17
17. पुस्तक– 'जख्म हमारे'; मोहन नैमिषराय; पृष्ठ सं० 54
18. पुस्तक– 'गूंगा नहीं था मै'; पृष्ठ सं० 26
19. पुस्तक– 'जख्म हमारे'; मोहन नैमिषराय; पृष्ठ सं० 25
20. पुस्तक– 'गूंगा नहीं था मैं'; पृष्ठ सं० 26
21. पुस्तक– 'गूंगा नहीं था मैं; पृष्ठ सं० 40
22. पुस्तक – 'जख्म हमारे'; मोहन नैमिषराय; पृष्ठ सं० 189